विषय:- आत्मकथा
नाम:- पुष्पा सोनी
गुवाहाटी
+91 8876546099

प्रतिबिम्ब

"माँ आप तो समझो ....मना नहीं करती शादी से ..पर मेरे कुछ सपने हैं उन्हें पूरा कर लूँ कुछ बनकर दिखाना चाहती हूँ माँ " बेटी का लगातार अनुरोध मेरा हृदय विदीर्ण कर रहा था। अपना ही प्रतिबिंब स्वरूप बिटिया , जैसे मैं खुद को ही दोहरा रही थी। सारी यादें परत दर परत चलचित्र की तरह खुलती चली गईं।

तीन भाई बहनों में सबसे छोटी और लाडली 'बबली' । घर भर में हिरनी सी कुलांचे मारती फिरती और पापा की तो जैसे जान बसती थी मुझ में। मेरे दोस्त, मेरे प्रेरणास्रोत - मेरी तो दुनिया ही उनके इर्द-गिर्द सिमट गई थी।

पापा ने अपनी बेटी को झांसी की रानी बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। आज से लगभग 30 वर्ष पूर्व लड़कियों को जूडो कराटे जैसे मार्शल आर्ट्स या आत्मरक्षा के लिए छुरे और लाठी चलाने का प्रशिक्षण दिलाना मामूली बात नहीं थी ।समाज के ताने... भ्रत्सना.. पर पापा ने किसी की एक ना सुनी ।

आज जब महिला सशक्तिकरण के नारे बुलंद होते देखती हूँ तो याद आता है वह दिन जब कक्षा में अव्वल आने वाली अपनी बिटिया को पापा ने लगातार सात दिनों तक घर बैठे देखा तो चुपचाप उठे और बाहर निकल गए वापसी में उनके हाथ में एक पैकेट था जिसे देकर बोले.. कल से स्कूल जाना है। मां बेचारी झींकती रहतीं कि लड़कियों वाले कोई लक्षण नहीं । कब सीखेगी चूल्हा चौका ...कौन सुनेगा ससुराल वालों के ताने। लेकिन मैं अपनी अल्हड़ दुनिया में मस्त थी।

अभी कॉलेज में कदम रखा ही था कि रिश्ते आने लग गए और तब पता चला कि जिस बेटी के लिए मां पापा गर्व से कहते थे कि हमारी बेटी सर्वगुण संपन्न है उसमें तो बहुत सी कमियां रह गई ।सबसे बड़ा अवगुण था मध्यमवर्गीय परिवार से होना । कोई कहता कि लड़की कांटेक्टलेंस लगाती है .. किसी को मैं स्टाइलिश नहीं लगती। मैंने बहुत कहा पापा पढ़ाई तो पूरी कर लूं पर पता नहीं क्यों मेरी हर बात मानने वाले पापा ने एक न सुनी और दूर नीलांचल की गोद में मुझे ब्याह दिया।
18 वर्ष की छोटी सी उम्र में सबसे बड़ी बहू बनकर मैंने ससुराल में कदम रखा। नया देश ,नया वेश, नए लोग, हर तरफ अनजान से चेहरे ..बहुत घबराहट होती थी शुरू शुरू में। ना साड़ी पहनना आता ना घरेलू काम और जब दोनों एक साथ हो तो समझो नीम चढ़ा करेला। कभी सर से पल्लू खिसकता.. कभी रोटियां जलती ।लेकिन दिल को सुकून देने वाली बात यह थी कि एकल परिवार से आई इस 'नई बीनणी' को ससुराल के भरे पूरे परिवार ने पलकों पर बैठाया। ननदें सजना सँवरना

सिखातीं और दादी मां घर के तौर-तरीके। सासू माँ अपने साथ रख कर व्रत त्योहारों की पूजा पद्धतियां बतातीं पर साथ ही साथ कितने सारे उलाहने 'यूँ घोड़ी जैसे ना चला करो' या 'यूं ठठाकर कर ना हंसो बहू पड़ोसी क्या कहेंगे' और मैं लोगों की परवाह करते-करते अपनी उन्मुक्त खिलखिलाहट को भूल कब होठों ही होठों में मुस्कुराना सीख गई पता ही ना चला। पति निहायत ही समझदार और जिम्मेदार इंसान थे ।उनके प्यार और परवाह से मुझे सब के साथ सामंजस्य बैठाने में काफी मदद मिली। पर कहीं कुछ था जो खाली था अपनी एक अलग पहचान बनाने का सपना.. जिसे मैंने ताक पर रखा और रम गई अपने संसार में। समय पंख लगा कर उड़ता रहा। बच्चों के जन्म, पढ़ाई आदि में ऐसी उलझी कि बीस वर्ष पलक झपकते ही उड़ गए।

फिर आई एक काली रात... जब हमें सब कुछ छोड़ कर खाली हाथ महानगरी गुवाहाटी आना पड़ा ।जिंदगी एक अजीब से मुकाम पर रुकी थी। किशोरावस्था को लांघते बच्चों की आंखों के अनगिनत सवाल बेचैन कर रहे थे।

फिर से नई जिंदगी शुरू करना इतना आसान न था ।पति तो तनाव ग्रस्त होकर होशोहवास खो बैठे। मैंने जैसे-तैसे बच्चों का स्कूल कॉलेज में दाखिला करवाया पर जीविकोपार्जन की समस्या जस की तस थी । कोई डिग्री भी नहीं थी कि नौकरी पा सकूं ।ना कोई ऐसा हुनर... ।

किसी शुभचिंतक ने तो यह तक सलाह दे डाली कि पति को छोड़ मायके चली जाओ।

कैसी विडंबना थी.. जिस इंसान ने जीवन के अनमोल पलों में मुझे पलकों पर रखा आज इस कठिन समय में उसका साथ छोड़ दूं... सोच कर ही मन लज्जित हो उठा।

मैं आसपास की महिलाओं के लिए योग शिविर लगाने लगी पर स्थाई आमदनी कुछ नहीं थी। अभी मुसीबतें शुरू ही हुई थीं कि मेरा जीवन स्तंभ पापा चल बसे ।आज भी उनकी वह बूढ़ी पनीली और लाचार आंखें मुझे बेचैन कर देती है ... ।अभी साल भर भी ना हुआ था कि माँ भी उनका वियोग नहीं सह पाई। शायद भगवान भी मेरी सहनशीलता की पराकाष्ठा देखना चाहते थे। मन बार-बार उद्विग्न हो उठता कि काश कोई तो हो जो आकर सिर पर हाथ रख दे कि 'मैं हूं ना सब ठीक हो जाएगा'।

मैं खुद को बहलाने के लिए अनजान लोगों से बातें करती। ऐसे लोगों के संपर्क में रहती.. जो मेरा विगत ना जानते हों। उन्हीं में से किसी देवदूत ने एक दिन राय दी कि 'डिग्री ना सही.. भाषा पर तो अधिकार रखती हो क्यों ना बच्चों को पढ़ाना शुरू कर दो'। जैसे डूबते को तिनके का सहारा मिला। एक बच्चे से शुरू किया तो रफ्तार पकड़ ली। धीरे धीरे वक्त गुजरने लगा।स्थिति थोड़ी सामान्य नजर आने लगी।

अब तक मेरे अपने बच्चों ने भी पढ़ाई के साथ-साथ मल्टीनेशनल कंपनियों में काम करना शुरू कर दिया था। अपनी माँ के संघर्ष को उन दोनों ने मूक रहकर देखा था और अब कंधे से कंधा मिलाने को तैयार थे । मैंने भी स्वयं को कुछ सामाजिक संस्थानों से जोड़ लिया जिससे परिचय सीमा बढ़ती

रहे। पर कल अचानक चाचा जी से फोन पर हुई एक बात ने मन को विचलित कर दिया '25 की हो गई बेटी कब तक बैठा कर रखोगी'। बात सही भी थी विवाह एक सामाजिक परंपरा है जिसका निर्वाहन हमारा कर्तव्य है ।

मैंने मन ही मन कुछ सोचा और अपने ही निर्णय पर मुस्कुरा उठी।

"गुड़िया तुम अपने सारे सपने पूरे करो शादी तभी होगी जब तुम चाहोगी"।

Untold True Story - Pushpa Soni